भारत की विदेश नीति में नेहरू की भूमिका

Braham Jeet*

MA in Political Science, UGC NET JRF, Proof Reader in Loksabha Secretariat, New Delhi

***शोध-सार -** स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की विदेश नीति का चरित्र मुख्यतः दो विचारधाराओं पर निर्भर था - पहला भारत को विश्व के दो शक्तिशाली गुटो अर्थात् अमेरिका के पूंजीपति गुट और सोवियत संघ के साम्यवादी गुट से अलग रहकर एवं अपनी स्वतंत्र पहचान बनाकर देश का विकास करना और दुसरा उनका अंतर्राष्ट्रीय मामलों मे सद्भावाना पूर्वक ईमानदारी से भरा विश्वास उत्पन्न करना था नेहरू का उद्देश्य था कि भारत की स्वतंत्र विदेश नीति हो और विश्व को भारत की विदेश नीति के माध्यम से शांति स्थापित करने का प्रयास था।*

***मुख्य शब्दः-** विदेश नीति, पंचशील, गुटनिरपेक्षता, राष्ट्रमण्डल, असंलग्नता*

---------------------------------X---------------------------------

प्रस्तावना:

जवाहरलाल नेहरू को भारतीय विदेश नीति का सूत्रधार कहा जा सकता है। वे न केवल स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री और 17 वर्ष तक विदेश मंत्री रहे, वरन् उससे पूर्व भी लंगभग 25 वर्षों से अखिल भारतीय कांग्रेस के विदेश मामलों के प्रमुख प्रवक्ता भी थे। वे अन्तर्राष्ट्रीयता और अखिल एशियावाद के समर्थक थे। वे साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और फासीवाद के विरोधी थे। वे चाहते थे कि सभी अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को, जहां तक हो सके, शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझाया जाये, यद्यपि वें साम्राज्यवादी और फासीवादी आक्रमणों को रोकने के लिए शक्ति के प्रयोग को भी अनुचित नहीं मानते थे। वे सोवियत संघ और चीन के प्रति विशेष रूप से सहानुभूति रखते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि ये देश साम्राज्यवाद के शत्रु हैं। महाशक्तियों के संघर्ष में वे भारत के लिए तटस्थता और समानता की नीति के प्रबल प्रतिपादक थे। नेहरू स्वतन्त्र भारत के प्रधानमन्त्री होने के साथ-साथ प्रथम विदेश मंन्त्री भी थे। सरकार और पार्टी में उनके साथियों ने विदेश नीति के निर्माण और संचालन का दायित्व उनके ही कन्धों पर डालना ठीक समझा क्योंकि स्वतन्त्रता से पूर्व भी नेहरू कांग्रेस तथा शेष विश्व के बीच कड़ी का कार्य कर रहे थे। नेहरू युग में भारतीय विदेश नीति के कतिपय महत्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैं:

भारत और राष्ट्रमण्डल

नेहरू ने विदेश नीति के क्षेत्र में वह महत्वपूर्ण निर्णय लिया कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना रहेगा। पं. नेहरू ने कहा कि "वर्तमान विश्व में जबकि अनेक विध्वंसकारी शक्तियां सक्रिय हैं और हम प्रायः युद्ध के कगार पर खड़े हैं, मैं सोचता हूं कि किसी समुदाय से सम्बन्ध-विच्छेद करना अच्छी बात नही हैं। राष्ट्रमण्डल की सदस्यता भारत के और सम्पूर्ण विश्व के लिए लाभदायक है। इससे भारत को लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग मिलेगा।" जिस समय नेहरू ने राष्ट्रमण्डल में बने रहने का फैसला किया उस समय उनके सामने अन्य उद्देश्यों के साथ शायद यह उद्देश्य भी रहा होगा कि इस मंच के द्वारा भारत नवोदित अफ्रीका और एशियाई देशों का सरगना बन सकता है। नेहरू यह जानते थे कि आर्थिक दृष्टि से भारत का अधिकांश व्यापार ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डल के देशों पर निर्भर है। इस हालत में एकाएक राष्ट्रमण्डल से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने में कठिनाई थी। सैनिक दृष्टि से भी भारत पूर्णतया ब्रिटेन पर आश्रित था। अपनी विस्तृत समुद्रतटीय सीमा की रक्षा के लिए भारत ब्रिटेन की नौ-सेना पर आश्रित था। भरत का पूरा सैनिक संगठन ब्रिटिश पद्धति पर आधारित था और नौ-सैनिक युद्धों के लिए वह ब्रिटेन का मोहताज था।

असंलग्नता-

यद्यपि पं. नेहरू ने यह कहा था कि असलंग्नता को 'नेहरू नीति' न हीं कहा जा सकता तथापि माइकेल ब्रेशर जैसे

विद्वान यह मानते हैं कि असलंग्नता के सिद्धान्त का निर्माण और क्रियान्वयन यथार्थ में नेहरू की बहुत बड़ी देन है। नेहरू ने ही विश्व को असंलग्नता का संदेश दिया है। नेहरू ने भारत के लिए जिस विदेश नीति का प्रतिपादन किया उससे देश की प्रतिष्ठा में अपार वृद्धि हुई। एशिया और अफ्रीका में बहुत-से लोग नेहरू और उनकी सरकार को शोषित मानवता का प्रवक्ता मानते थे और राजनीतिक पराधीनता एवं उपनिवेशवाद के विरूद्ध जारी संघर्ष में उनसे नैतिक और भौतिक समर्थन की अपेक्षा करते थे।

अन्तरिम सरकार की स्थापना के कुछ समय पश्चात् 7 दिसम्बर, 1946 को आकाशवाणी से प्रसारित अपनी प्रथम शासकीय घोषणा में नेहरू ने कहा: "हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपनी मौलिक नीति के अनुसार भाग लेगें, अन्य राष्ट्रों के उपग्रह के रूप में नहीं। हमारा विचार यथासम्भव गुटों की सत्ता की राजनीति से अलग रहने का है। एक-दूसरे के विरूद्ध संगठित इन गुटों ने अतीत में भी विश्व-युद्ध करवाये हैं और भविष्य में भी ये संसार को भयंकर विनाश की ओर ले जा सकते हैं।"

नेहरू के अनुसार गुटनिरपेक्षता का अर्थ 'तटस्थता' नहीं था। यह एक सकारात्मक विदेश नीति थी जिसका अर्थ था - शक्तिमूलक राजनीति से पृथक् रहना तथा सभी राज्यों के साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और सक्रिय अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग - चाहे वे राष्ट्र गुटबद्ध हों या गुटपिरपेक्ष हों। नेहरू के शब्दो में, "किसी एक शक्ति के साथ गुटबद्ध हो जाने का मतलब यह है कि हम अपना मत त्याग रहे हैं, उस नीति को भी छोड रहे है जिसका हम साधारणतः अनुसरण करते.....।" उन्होंने कहा कि "संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधियों को सरकार के अनुदेश ये थे कि वे प्रत्येक प्रश्न पर पहले भारत के हित की दृष्टि से विचार करें, और फिर उचित-अनुचित के आधार पर सोचें-विचारें, अर्थात् यदि भारत उससे प्रभावित न होता हो तो वे स्वभावतः उचित-अनुचित के पक्ष पर विचार करें, केवल यह न सोंचे कि उन्हें इस या उस शक्तिशाली राष्ट्र को प्रसन्न करने के लिए कुछ करना है या वोट देना है।"

महाशक्ति का सपना

नेहरू भारत को एक महान् भविष्य अथवा महान स्थिति का राष्ट्र मानते थे। उन्हें विदित था कि एशिया के मानचित्र पर भारत जिस प्रकार व्यवस्थित है। उसमें उसकी स्थिति, शक्ति एवं प्रभाव क्षमता स्वयंसिद्ध है। वह एक बहुत बड़ी राजनीतिक इकाई है। दक्षिण, पश्चिम और दक्षिण एशिया के देशों की स्थिति के प्रसंग में भारत की भूमिका इतनी केन्द्रीय है कि यदि वह स्वयं इसे न स्वीकार करे तो भी इस भूमिका के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। उनका अनुमान था कि यदि भविष्य में झांककर देखा जाये और यदि कोई बड़ा संकट नही आता है तो भारत अमरीका, सोवियत संघ और चीन के बाद स्पष्टतः चैथी महाशक्ति है।

पंचशील

नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में 'पंचशील' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और इस कारण उन्हें आदर्शवादी कहा जाता था, किन्तु वस्तुतः यह उनकी यथार्थवादी कूटनीतिक चाल थी। वे चीन को 'पंचशील' सिद्धान्तों में उलझाये रखना चाहते थे ताकि कोई बड़ा संघर्ष टाला जा सके। तिब्बत के प्रश्न पर हमने जो कुछ भी किया उसे एक निजी मजबूरी कहा जा सकता है। हमारे सामने सभी विकल्प द्वार बन्द हो चुके थे। हिमालय का प्रांगण रणनीति की दृष्टि से उपयुक्त नहीं था। ब्रिटेन ने एक समुद्री शक्ति होने के कारण कोई विशेष उत्साहप्रद समर्थ नहीं दिया। फिर देश के विकास की आन्तरिक प्रगति इतनी धीमी थी कि कोई भी व्यवहार-कुशल प्रधानमन्त्री ऐसे आदर्शवादी निर्णय कैसे ले सकता था जिससे राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा होती हों।

अफ्रेशियाई एकता

नेहरू एशिया और अफ्रीका के नवस्वतन्त्र राष्ट्रों की एकता के प्रबल समर्थक थे। एशियाई राष्ट्रों की एकता बनाये रखने के लिए उनकी पहल पर मार्च 1947 में नई दिल्ली में एक एशियाई सम्मेलन का आयोजन किया गया। दूसरा सम्मेलन इण्डोनेशिया के प्रश्न पर जनवरी 1949 में दिल्ली में आयोजित किया गया। नेहरू ने 1955 में वाण्डुंग सम्मेलन में भाग लिया और वे चाहते थे कि इस सम्मेलन के द्वारा एशियाई देशों के बीच सहयोग और मित्रता की भावना को और मजबूत किया जाये।

भारत-चीन युद्ध

जब भारत-चीन युद्ध शुरू हुआ तो देश के कई भागों में इस बात की मांग होने लगी कि असलंग्नता की नीति पूर्णतया असफल हो चुकी है और देश के हित में इसका जल्द-से-जल्द परित्याग होना चाहिए। परन्तु 20 अक्टूबर, 1962 को रेडियों से राष्ट्र के नाम सन्देश देते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट कर दिया कि भारत अपनी असंलग्नता की नीति का अनुसरण करता रहेगा। इसके बाद चीन तथा भारत का युद्ध जारी रहा तथा नेफा में भरतीय सेना की पराजय हुई। युद्ध की स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गयी और भारत की सुरक्षा अत्यधिक खतरे में पड़

www.ignited.in

गयी। इस हालत में भारत सरकार ने पश्चिमी राष्ट्रों से सैनिक सहायता के लिए अपील की। अमरीका और ब्रिटेन ने भारत को सहायता देने का निर्णय किया और इन देशों से बड़ी मात्रा में शस्त्र भारत पहुचायें गये। नेहरू मानते थे कि असलंग्नता की नीति को छोड़कर अमरीकी गुट में शामिल हो जाने के फलस्वरूप भारत-चीन सीमा-संघर्ष शीत-युद्ध का एक अंग बन जाता। नेहरू ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए निर्णय लिया कि भारत अपनी रक्षा के लिए सभी मित्र-राष्ट्रों से सहायता लेगा, लेकिन असलंग्नता की नीति का परित्याग नही करेगा।

निष्कर्ष:-

नेहरू ने भारत की विदेश नीति में विश्व-शांती को बनाये रखना, युद्ध की सम्भावनाओं को खत्म करना, विवादों का मध्यस्थता करना, जातिभेद, रंगभेग और साम्राज्यवाद का विरोध करना, असंलग्नता नीति को बनाए रखना तथा राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना था। तथा मुख्यतः कार्य:-

1. विश्व-शान्ति की स्थाना के लिए प्रयत्न करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भारत के स्वतंत्र दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करना।

संदर्भ सूचीः-

1. Michael Brecher, Nehry: A Political Biography, 1959 p. 564
2. एस.आर. महरोत्रा, इण्डियन फॉरेन पालिसिज - दि नेहरू एस, 1975, पृ0 40-41
3. जे.एन दीक्षित भारत की विदेश नीति तथा इनके पड़ोसी, 2005
4. डॉ. राजबाला सिंह, भारत की विदेशनीति, 2005, पृ. 66
5. डॉ. संजय कुमार और मनुराग जायसवाल, युद्ध एवं शांन्ति की अवधारणा, 2007
6. डॉ. ब्रजेन्द्र प्रताप गौतम, भारत की विदेश नीति, 2002, पृ. 74

Corresponding Author

Braham Jeet*

MA in Political Science, UGC NET JRF, Proof Reader in Loksabha Secretariat, New Delhi

braham777@gmail.com